के अनुसार 1904 में जापान द्वारा रूस को पराजित किया जाना तथा 1905 में इंगलैण्ड में लिबरल पार्टी की सत्ता में आना था ।

1.0.2 लॉर्ड कर्जन के त्याग-पत्र के पश्चात् नवंबर 1905 म लॉर्ड मिण्टो की नियुक्ति हुई । नए गवर्नर की राजनीतिक दृष्टि निश्चित रूप से अनुदार थी । दिसम्बर 1905 में भारत मंत्री के पद पर लॉर्ड मॉर्ले की नियुक्ति हुई । वयोवृद्ध लॉड मॉर्ले (मंत्री पद स्वीकार करते समय उसकी आयु 67 की थी) की प्रसिद्धि एक उदारवादी राजनीतिज्ञ की थी, जो स्वयं अपने को बर्क और मिल के राजनीतिक सिद्धान्तों का उपासक मानता था । इसके अतिरिक्त वह ग्लैडस्टन की आत्मकथा का भी रचयिता था । मार्ले के सत्ता में आते ही कांग्रेस के नरम पंथियों के हृदय में आशा की एक लहर दौड़ पड़ी । इनके प्रमुख नेता गोपाल कृष्ण गोखले मार्ले के सत्ता में आने के कुछ ही दिनों पूर्व इंग्लैण्ड में थे और उन्होंने भावी भारत मंत्री से एक भेंट में विधान परिषदों और कार्यकारिणी में समुचित सुधारों की मांग की । दिसम्बर 1905 में बनारस के कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण करते हुए गोखले ने इंगलैण्ड की लिबरल सरकार की ईमानदारी और विशेषत: लॉर्ड मार्ले की उदार राजनीतिक विचारधाराओं में अपनी आस्था दुहराई । इसी विश्वास के आधार पर कांग्रेस ने 1905 में ''आवश्यक सतर्कतापूर्ण'' तरीकों से स्वशासन प्राप्त करने के उद्देश्य की घोषणा की । बनारस अधिवेशन के बाद गोखले फिर इंगलैण्ड गए और मई-जून 1906 में उन्होंने मार्ले से पाँच-छ: बार मुलाकात की । इन मुलाकातों के परिणामस्वरूप मार्ले ने अपने पत्रों में भारत के वाइसराय मिण्टो से तुरंत सुधारों को प्रारंभ करने का आग्रह किया । मार्ले का विचार था कि यदि ब्रिटिश संसदीय संस्थाओं की स्थापना भारत में न भी की जा सके–तो कम से कम उनकी ''आत्मा'' तो हस्तांतरित की जा सकती है । अपने इन्हीं विचारों और आशाओं के अनुरूप मार्ले ने ब्रिटिश संसद में 20 जुलाई 1906 को यह घोषणा की कि भारत में सांविधानिक सुधारों पर विचार-विमर्श प्रारंभ हो गया है । गोखले ने स्वयं दर्शक दीर्घा से इस भाषण को सुना था और स्वदेश लिखे हुए अपने एक पत्र में उन्होंने यह कहा कि लॉर्ड रिपन के भारत से जाने के बाद किसी उत्तरदायित्व के पद पर भारत का इतना परम मित्र कोई नियुक्त नहीं हुआ ।

1.0.3 जहाँ पर लॉर्ड मार्ले (ब्रिटेन की) ''साम्राज्यवादी सरकार और भारत के उदारवादी राष्ट्रवादियों के बीच एक व्यावहारिक संधि'' की नींव रखने की कल्पना कर रहा था, वहीं भारत में वाइसराय मिण्टो नरमपंथी कांग्रेस के विरुद्ध एक संभावित गठजोड़ की योजना बना रहा था । उसके अनुसार नरमपंथी कांग्रेस में भी कुछ तत्व नितांत राजद्रोही था और किसी भी सांविधानिक योजना को स्वीकार करने से पूर्व कांग्रेस की विचारधारा के अतिरिक्त समाज के रूढ़िवादी वर्गों के हितों का ध्यान रखना अनिवार्य था । इस तथाकथित रूढ़िवादी वर्गों में भारतीय समाज का सामंती वर्ग, उच्च भूमिपतियों का वर्ग और देशी रजवाड़ों का वर्ग था । उसके अनुसार इनके विचारों की अवहेलना नहीं की जा सकती थी । मिण्टो के अनुसार अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त एक सूक्ष्म अल्पसंख्यक वर्ग की अपेक्षा समाज का अनुदार वर्ग समाज में स्थायित्व की स्थापना में अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान करता था और सही अर्थों में वही उसका नेतृत्व करता था ।

1.0.4 यह प्रारंभ से ही स्पष्ट था कि मार्ले और मिण्टों की विचारधाराओं में आधारभूत अन्तर था । मिण्टो कांग्रेस को ब्रिटिश राज का शत्रु मानता था और प्रत्येक उन शक्तियों को प्रोत्साहित करने को उत्सुक था, जो उसके प्रभाव को कम करने में सहायक हो सके । इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर मिण्टो ने मुसलिम समुदाय के उन प्रयासों का स्वागत किया, जिसके द्वारा वे सुधारों की प्रक्रिया में अपने हितों की सुरक्षा करना चाहते थे । 1875 में सर सैय्यद अहमद खाँ द्वारा मुहम्मडन ऐंग्लो ओरियंटल कॉलेज की अलीगढ़ में स्थापना के बाद पश्चिमी शिक्षा प्राप्त मुसलमानों का एक वर्ग अपने को कांग्रेस आन्दोलन से क्रमश: दूर समझने लगा था, क्योंकि सर सैय्यद के अनुसार ब्रिटिश राज के प्रति राजभक्ति ही मुसलमानों के भविष्य की सुरक्षा है । इसलिए ज्यों ही लॉर्ड मार्ले ने ब्रिटिश संसद में सुधारों की संभावना की घोषणा की, मुसलिम नेताओं को अपने समुदाय के भविष्य की चिन्ता ने ग्रस्त कर लिया । उनकी इस चिंता को और भी तीव्र करने का कार्य अलीगढ़ कॉलेज के प्रिंसिपल डब्लू-ए-आर्कबोल्ड ने किया । आर्कबोल्ड की भूमिका ब्रिटिश सरकार के शीर्षस्थ अधिकारियों और मुसलिम समाज के लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तियों के बीच एक सेतु स्थापित करने की थी । इसलिए जब कॉलेज के सेक्रेटरी मोहसिन उल-मुल्क ने 4 अगस्त 1906 को लिखे अपने पत्र में मार्ले द्वारा संसद में सांविधानिक सुधारों पर दिए गए वक्तव्य को राष्ट्रीय कांग्रेस की एक बड़ी सफलता बताया तो आर्कबोल्ड ने इस व्याख्या को सहर्ष स्वीकार

किया। वह पत्र मिण्टो के पास 8 अगस्त को पहुँच गया और उसी दिन उसकी सूचना मार्ले के पास पहुँचा दी गई। मोहसिन-उल-मुल्क ने वायसराय के पास एक शिष्ट मण्डल भेजने और उसे मुसलिम समस्या पर एक ज्ञापन देने का निर्णय किया। अक्टूबर 1906 को शिमला में आगा खाँ के नेतृत्व में 35 सदस्यीय एक शिष्ट-मण्डल मिण्टो से मिला। अपने ऐतिहासिक उत्तर में मिण्टो ने शिष्ट-मण्डल को वह आश्वासन दिया कि भविष्य के किसी भी राजनीतिक और सांविधानिक परिवर्तन में मुसलमानों की इस देश के इतिहास और राजनीति में अहम् भूमिका का पूरा ध्यान रखा जाएगा।

1.0.5 इस बीच अगस्त 1905 में मिण्टो ने सुधारों के सम्बन्ध में विचार करने के लिए अपनी कार्यकारिणी की एक समिति, ए० टी० अरंहल के अधीन नियुक्त की। इस समिति का यह स्पष्ट निर्देश था कि किसी भी सुधार की रूपरेखा में सामंतों, जमींदारों, व्यापारियों, यूरोपीयन व्यावसायिक हितों की पूरी सुरक्षा की जाए। हरंहल समिति की संस्कृति पर भारत सरकार ने मार्च 1907 में एक सरकारी पत्र (डिसपैच) भारत मंत्री के पास भेजा। भारत की विभिन्न विधान परिषदों के विस्तार के साथ-साथ इस पत्र में एक समिति (कौंसिल ऑफ नोटेबुल्स) की भी स्थापना की व्यवस्था की थी। मार्ले को भारत सरकार के इन अत्यंत साधारण प्रस्तावों से बहुत निराशा हुई और उसने मिण्टो से अधिक विस्तृत प्रस्तावों को भेजने का आग्रह किया। अन्ततः भारत सरकार द्वारा, प्रान्तीय सरकारों के साथ विस्तृत विचार-विमर्श के बाद अक्टूबर 1908 में भारत मंत्री को सुधारों के प्रस्ताव भेजे गए। सुधारों के विचार विमर्श में बहुत विलम्ब हो चुका था। मार्ले दिसम्बर के अन्तिम सप्ताहों के पूर्व ही सुधारों की घोषणा करना चाहते थे ताकि जब कांग्रेस का अधिवेशन हो तो नरमपंथियों की राजनीतिक साख बनी रहे। भारत सरकार के प्रस्तावों के उत्तर में लिखे अपने 27 नवम्बर 1908 के पत्र में मार्ले ने लगभग सभी सुझावों को स्वीकार कर लिया। लेकिन मिण्टो द्वारा मुसलमानों को पृथक चुनाव प्रणाली की सुविधा देने के प्रति उसकी गंभीर आंशकाएँ थीं। यह एक निर्विवाद सत्य था कि 1892 के भारतीय विधान परिषद अधिनियम के लागू होने के बाद से विभिन्न परिषदों में मुसलमानों को अपनी जनसंख्या के अनुपात में नगण्य प्रतिनिधित्व मिला था। गवर्नर जनरल की विधान परिषद में 1892 से 1906 के बीच मुसलमानों को केवल 12 प्रतिशत प्रतिनिधित्व मिला था जबकि जनसंख्या में उनका अनुपात 23 प्रतिशत था। मद्रास और संयुक्त प्रान्त में इस काल में उन्हें कोई भी प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका था और बंगाल में जहाँ की जनसंख्या के वे आधे से भी अधिक भाग थे, वहाँ की चुनी गई विधान परिषदों में उनका हिस्सा केवल 5.7 प्रतिशत था। इन्हीं विसंगतियों को दूर करने के लिए मिण्टो ने मुसलमानों के प्रतिनिधि मण्डल को उनके प्रतिनिधियों को चुनने के लिए केवल उन्हीं के समुदाय के सदस्यों से चुनने की बात कही थी। यही आश्वासन पृथक चुनाव-प्रणाली का आधार बना था। इसके अतिरिक्त मुसलमान सामान्य चुनाव-मण्डलों में भी अपना मत दे सकते थे।

लॉर्ड मॉर्ले ने दो पृथक् मतदाता सूची बनाए जाने की नीति की आलोचना की और इस प्रणाली को राष्ट्रीयता की भावना के विकास में बाधक बताया। इसके स्थान पर उसने आनुपातिक चुनाव-मण्डलों के प्रस्ताव का विकल्प दिया, जिससे प्रत्येक चुनाव क्षेत्र में प्रारंभिक स्तर पर मिश्रित चुनाव मण्डलों में दोनों समुदायों के उम्मीदवारों को मत मिलता, परन्तु चुनाव परिणाम की घोषणा के समय जनसंख्या में अनुपात के अनुसार दोनों वर्गों के उम्मीदवारों को चुना हुआ माना जाता। लार्ड मिण्टो ने मार्ले के इन प्रस्तावों की कड़ी आलोचना की। उसका पक्ष यह था कि 1906 में शिमला में मुसलिम प्रतिनिधि मण्डल को दिया हुआ आश्वासन सरकार की ओर से दिया हुआ वचन था और उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता। 1908 के अधिवेशन में मुसलिम लीग ने मार्ले की भर्त्सना की और लंदन में उसकी शाखा ने इन प्रस्तावों के विरुद्ध प्रचार किया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि मार्ले का साहस जाता रहा और उसने प्रस्तावों का परित्याग कर दिया।

1.1 उद्देश्य

1861 एवं 1892 की कमियों को 1909 के सुधार अधिनियम के द्वारा किस हद तक दूर किया जा सका इसी का विश्लेषण करना वर्तमान इकाई का मुख्य उद्देश्य है।

1.2 1909 के अधिनियम के प्रावधान :

1909 के सुधारों के निर्माताओं का वह दृढ़ विश्वास था कि भारत की परिस्थितियों में भौगोलिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली का लागू किया जाना असंभव था । एक ओर भौगोलिक क्षेत्र बहुत विस्तृत था और दूसरी ओर जनसंख्या धर्मों और जातियों में विभाजित थीं । इन्हीं कारणों से विभिन्न हितों, वर्गों, धार्मिक समुदायों और व्यापारिक वर्गों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई । इसलिए जब 15 नवम्बर 1909 को भारतीय परिषद् अधिनियम के अन्तर्गत चुनाव नियमों को प्रकाशित किया गया तो निम्नांकित चुनाव मण्डलों की व्यवस्था की गई ।

1. कुछ सीमित हितों को जैसे विश्वविद्यालय प्रेसीडेंसी, महानगर निगमों, वाणिज्य मण्डलों और बागान मालिकों को अपने प्रतिनिधियों को चुनने की सुविधा थी ।
2. कुछ विस्तृत हितों जैसे भूमिपतियों और व्यावसायिक हितों (वकील, अध्यापक, डाक्टर) को प्रतिनिधित्व दिया गया ।
3. साम्प्रदायिक हितों जैसे मुसलमानों (और कालांतर में सिखों को) प्रतिनिधित्व दिया गया ।

1.2.1 1909 के सुधारों की दूसरी प्रमुख विशेषता यह थी कि प्रान्तीय परिषदों में अब तक लागू सरकारी बहुमत के सिद्धान्त का परित्याग कर दिया गया । गवर्नर जनरल की परिषद् में अभी भी सरकारी सदस्यों का बहुमत बना रहा । यह विश्वास प्रकट किया गया कि प्रान्तों में गवर्नर/ले० गवर्नर के विशेषाधिकार और केन्द्र में प्रान्तों के लिए आवश्यक विधेयक पारित करने का अधिकार गैर सरकारी, बहुमत दिए जाने के जोखिम के विरुद्ध पर्याप्त सुरक्षा थी ।

उपर्युक्त सिद्धान्तों की सीमाओं के अन्तर्गत प्रान्तीय परिषदों का अत्यधिक विस्तार किया गया । बड़े प्रान्तों, जैसे मद्रास, बम्बई, बंगाल और संयुक्त प्रान्त की विधान परिषदों की अधिकतम सदस्य संख्या 50 कर दी गई । अपेक्षाकृत छोटे प्रान्तों जैसे पंजाब, वर्मा, पूर्वी बंगाल और आसाम की अधिकतम सीमा 30 कर दी गई । 1912 के बंगाल के पुनर्निर्माण के बाद बिहार और उड़ीसा की 45, सेन्ट्रल प्रॉविन्संज की 25 और आसाम के परिषद की अधिकतम सीमा 27 निश्चित की गई (जैसा ऊपर कहा गया है) प्रान्तीय विधान परिषदों में गैर-सरकारी सदस्यों का बहुमत था, परन्तु नवम्बर 1909 के नियमों के अन्तर्गत सदस्यों की नियुक्ति इस प्रकार की गई थी कि मनोनीत किए गए सदस्यों (इसमें सरकारी सदस्य दोनों ही सम्मिलित) की संख्या प्रान्तीय परिषदों के चुने हुए सदस्यों से अधिक थी । केवल बंगाल एक ऐसा अपवाद था जहाँ चुने हुए सदस्यों की संख्या मनोनीत किए हुए सदस्यों से अधिक थी ।

1.2.2 विधान परिषदों का संविधान थोड़ी-बहुत विभिन्नताओं के साथ गवर्नर जनरल की विधान परिषद की ही भांति था । गवर्नर जनरल की विधान परिषदों की "अतिरिक्त" सदस्यों की संख्या 60 थी, जिसमें मनोनीत सदस्यों की संख्या 33 और चुने हुए सदस्यों की संख्या 27 थी । मनोनीत किए हुए सदस्यों में 28 सरकारी अधिकारी, 3 गैर सरकारी सदस्य और 2 विशेषज्ञ थे । जहाँ तक चुने हुए सदस्यों का सवाल था वर्गों और हितों के आधार पर उनका वितरण इस प्रकार किया गया था ।

1. सात प्रान्तों के जमींदार वर्ग को 7 स्थान,
2. पांच प्रान्त के मुसलमानों को पृथक चुनाव प्रणाली से 5 स्थान,
3. बंगाल और संयुक्त प्रान्त के मुसलिम जमींदारों को एक वर्ष छोड़कर एक स्थान,
4. वाणिज्य मण्डलों को 2 स्थान और
5. 12 स्थान आठ प्रान्तों के गैर सरकारी विधान परिषदों के सदस्यों को दिए गए थे। वस्तुत: वे ही 12 स्थान सामान्य और स्वतंत्र चुनाव मण्डलों के द्वारा चुने जाते थे ।

लॉर्ड मार्ले ने यह घोषणा की थी कि केन्द्रीय विधान परिषद में सरकारी सदस्यों को प्रान्तीय परिषदों के विपरीत बहुमत बना रहेगा ताकि भारत सरकार बिना किसी हिचक के ब्रिटेन की "सरकार और संसद" के प्रति अपने उत्तरदायित्व

का निर्वाह करती रहे । वहाँ उसने उस सांविधानिक स्थिति को स्पष्ट किया, जिसमें जबतक भारत की सरकार वहाँ की चुनी हुई विधायिका के प्रति उत्तरादायी नहीं होती तब तक वह ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तदायी बनी रहेगी ।

1.2.3 1909 के सुधारों की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि चुनाव प्रणाली को, जिसे 1892 में केवल परोक्ष रूप से स्वीकार किया गया था, विधिवत् मान्यता दे दी गई । इससे ही उत्पन्न सांविधानिक आवश्यकता वह थी कि चुनावों के लिए इच्छुक उम्मीदवारों और मतदाताओं की योग्यता और अयोग्यता को निश्चित और स्पष्ट किया जाए । उदाहरणार्थ अपराधी और दिवालियेपन का रिकार्ड गंभीर अयोग्यता थी । उसी प्रकार चुने हुए सदस्यों को ब्रिटिश ताज के प्रति स्वामीभक्ति की शपथ लेना अब एक अनिवार्यता बन गई ।

1.2.4 विभिन्न परिषदों की सदस्य संख्या में वृद्धि के साथ उनके अधिकारों में भी वृद्धि की गई । इसमें संदेह नहीं कि इस अधिनियम के अन्तर्गत विभिन्न परिषदों के सदस्यों के विचार-विमर्श के अधिकारों को अप्रत्याशित रूप से बढ़ा दिया । 1892 के अधिनियम ने सदस्यों को आम बजट पर आम बहस का ही मौका दिया था । अब उन्हें बजट के अन्तिम रूप से पारित करने से पूर्व न केवल बहस करने का बल्कि प्रमुख मुद्दों पर मत देने और विभक्त होने का भी अधिकार मिला । सदस्य बजट पर प्रस्ताव (Resolution) भी प्रस्तुत कर सकते थे । न केवल बजट पर परन्तु सार्वजनिक हित के अन्य मुद्दों पर भी प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता था और उसपर मतदान कराया जा सकता था । परन्तु ऐसे प्रस्तावों की भाषा संगत होनी चाहिए थी और सरकार के पास वह संस्तुति के ही रूप में भेजी जा सकती थी । सरकार को ऐसे प्रस्तावों को स्वीकार करने की कोई अनिवार्यता नहीं थी । इसी प्रकार कोई भी प्रस्ताव शासनाध्यक्ष द्वारा बिना कारण बताए अस्वीकार किया जा सकता था । 1892 में सदस्यों को प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया था, 1909 में इसको परिपूर्ण किया गया और उनको पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार भी दिया गया ।

1.2.5 1909 के सुधारों का मूल्यांकन :

1909 का सुधार भारत में दो परस्पर विरोधी राजनीतिक परिस्थितियों के संघर्ष का परिणाम था । एक ओर तो 1905 में बंगाल के विभाजन के बाद क्रान्तिकारी आन्दोलनों का प्रारम्भ और लोकप्रियता बढ़ रही थी, दूसरी ओर नरमपंथी सांविधानिक सुधारों द्वारा राजनीति पर अपना प्रभाव बनाए रखना चाहते थे । भारत में सरकार जहाँ क्रान्तिकारियों को दमन से कुचल देना चाहती थी, वहीं नरमपंथियों के विरुद्ध प्रतिलोलन की नीति का पालन करके सभी रूढ़िवादी और अनुदार तत्वों की सहायता से अपना आधार पुष्ट करना चाहती थी । इसी नीति का पालन करके सभी रूढ़िवादी और अनुदार तत्वों की सहायता से अपना आधार पुष्ट करना चाहती थी । इसी नीति का अंग धार्मिक समुदायों को पृथक चुनाव-प्रणाली प्रदान करना था, जो न केवल एकताबद्ध राष्ट्रीयता के विकास में बाधक था बल्कि जनतांत्रिक मूल्यों के भी विरुद्ध था ।

इस संरचनात्मक सीमा के बावजूद वह निस्संकोच कहा जा सकता है कि 1861 में मात्र विधेयकों को पारित करने के उद्देश्य से बनाई गई विधान परिषदों का रूप बहुत परिवर्तित हो गया था । सरकार के सभी प्रशासनिक कार्यों की अव आलोचना की जा सकती थी । लॉर्ड मार्ले ने संसद में यह अवश्य घोषणा की थी कि उसके सुधारों का उद्देश्य संसदीय व्यवस्था लागू करना नहीं है परन्तु वह अस्वीकारोक्ति इंग्लैण्ड में विरोधी दल को आश्वस्त करने के लिए की गई थी । वस्तुत: मार्ले के कथन का सरल उद्देश्य यह बताना था कि भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना तक वहाँ की सरकार ब्रिटिश पार्लियामेंट के प्रति जवाबदेह रहेगी । कार्यकारिणी का विधायिका के प्रति अनुत्तरदायी होना ही इन सुधारों का सबसे बड़ा दोष था । सरकार की आलोचना करने, उससे प्रश्न पूछने विभिन्न विषयों पर प्रस्ताव पारित करने का बहुत विस्तृत अधिकार तो परिषद के सदस्यों को मिला परन्तु कार्यकारिणी की उत्तर पर उसका कोई प्रभाव नहीं था । मांण्टेग्यू चेम्स के दायित्व फोर्ड रिपोर्ट के अनुसार संसदीय अधिकारों का अधिकतम विकास हुआ परन्तु वह उत्तरदायित्व के अभाव में कार्यकारिणी से घर्षण की ही स्थिति पैदा कर सका ।

1.3 सारांश

(क) 1861 एवं 1892 के अधिनियम से बढ़ता असन्तोष ।

(ख) ब्रिटिश सरकार की ओर से स्थिति में सुधार के प्रयास ।

(ग) 1909 के अधिनियम के प्रावधान ।

(घ) अधिनियम की विशेषताएँ ।

(ङ) अधिनियम का मूल्यांकन ।

1.4 व्याख्यावाले शब्द :

पूरक प्रश्न,

बजट,

हस्तांतरित

शिष्टमंडल;

मनोनीत;

उत्तरदायी;

विधायिका

1.5 प्रश्नावली :

(क) संक्षिप्त प्रश्न

(i) किन परिस्थितियों में 1909 का अधिनियम पारित हुआ ?

(ii) 1909 के अधिनियम की कौन-सी विशेषताएँ थीं ?

(ख) लम्बे उत्तरवाले प्रश्न

(i) 1909 के अधिनियम के प्रावधानों का विश्लेषण करें ।

(ii) 1909 के अधिनियम की समीक्षा करें ।

1.6 पाठ्य पुस्तकें

1. भारत का वैधानिक इतिहास : ए० सी० बनर्जी

2. भारत में वैधानिक एवं राजनीतिक विकास : जी० एन० सिंह

3. Coustitutional Development and National Movement of India : R. C. Agarwal

4. British Policy in India (1858–1905) : S .Gopal.

◆◆◆

मौन्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार
(भारत शासन अधिनियम (1919)एवं द्वैध शासन प्रणाली)

पाठ-संरचना

1.0 भूमिका
1.1 उद्देश्य
1.2 मुख्य विषय
1.2.1 उप मुख्य विषय से 1.2.30 तक
1.3 सारांश
1.4 व्याख्या वाले शब्द
1.5 प्रश्नावली
(क) संक्षिप्त उत्तर वाले प्रश्न
(ख) लम्बे उत्तर वाले प्रश्न
1.6 पाठ्य पुस्तकें

1.0 भूमिका

इतिहासकार एवं संविधान विशेषज्ञों ने स्पष्ट कहा है कि 1909 तक ब्रिटिश सरकार ने प्रशासन में भारतीयों का अधिकतम सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि भारतवासी व्यापक आधार पर स्वतंत्रता की मांग कर रहे थे। अत: उनका प्रशासन में सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर 1861, 1892 एवं 1909 के अधिनियम पारित किए। लेकिन ब्रिटिश सरकार की यह सहयोगात्मक नीति एवं व्यवहार सफल न हो सके।

1.1 उद्देश्य

उपरोक्त सुधारों की विफलताओं को दूर करने में 1919 का अधिनियम कहां तक सफल रहा यह अध्ययन करना इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है।

1.1.1 आवश्यक परिस्थितियाँ :

1909 ई० का सुधार-कानून भारत में नर्म-दल के व्यक्तितयों को भी संतुष्ट न कर सका। भारतीय राष्ट्रवाद की भावना तीव्रतर होती गयी। 1914 ई० में प्रथम महायुद्ध आरंभ हो गया। गवर्नर जनरल लॉर्ड हार्डिंज की उदार नीति और सद्भावना के कारण भारतीयों ने युद्ध में अंग्रेजी सरकार को पूर्ण सहायता दी। स्वयं महात्मा गांधी ने भारतीय जनता से सरकार को सहायता देने की मांग की। युद्ध के अवसर पर मित्र राष्ट्रों ने यह घोषणा की कि वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए नहीं वरन् संसार में जनतंत्र की सुरक्षा के लिए युद्ध के पश्चात् उन्हें स्वशासन प्राप्त हो सकता है। युद्ध के समय मैसोपोटामिया में भारतीय सैनिकों को भारत सरकार की अयोग्यता के कारण जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं उसकी जाँच हेतु एक कमीशन की नियुक्ति की गयी और उस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि भारतीयों की वफादारी प्राप्त

करने तथा भारत सरकार के शासन में सुधार के लिए आवश्यक है कि किसी न किसी मात्रा में शासन में भारतीयों का सहयोग प्राप्त किया जाये । इसके अतिरिक्त कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के समझौते से भारत में स्वशासन (Home rule) की मांग का तीव्र होना, कांग्रेस में उग्रवादियों का बहुमत और मौण्टेग्यू सदृश उदार विचारों के व्यक्ति का भारत सचिव होना आदि ऐसे अन्य कारण थे जिनसे नवीन सुधारों की सम्भावना हो सकी । 20 अगस्त, 1917 ई० को० मि० मोण्टेग्यू ने एक घोषणा की जिसमें उसने भविष्य के सुधारों की ओर संकेत किया । इसी बीच 1917 ई० में गोपाल कृष्ण गोखले ने सुधारों की अपनी योजना प्रस्तुत की जो Gokhale's Political Testament के नाम से विख्यात हुई और अन्य 19 भारतीयों ने भी गर्वनर जनरल चेम्सफोर्ड के सम्मुख सुधारों की एक अन्य योजना प्रस्तुत की । एक अंग्रेज सदस्य कर्टिस (Curtis) ने भी द्वैध शासन की एक योजना का निर्माण कर लिया था, जिससे मोण्टेग्यू सहमत हो चुके थे और जिसका ज्ञान चेम्सफोर्ड को भी था । अपनी घोषणा के तीन माह पश्चात् मोण्टेग्यु स्वयं भारत आये और छः माह यहाँ रहे । 1918 ई० में माण्टेग्यू और चेम्सफोर्ड के संयुक्त हस्ताक्षरों से भारत में सुधारों के लिए एक रिपोर्ट प्रकाशित की गयी जिसके आधार पर 1919 ई० का भारत सरकार कानून बनाया गया ।

1.1.2 मार्ले-मिन्टो सुधार के प्रति भारतीयों में प्रतिक्रिया एवं असंतोष :

मार्ले-मिण्टों सुधार ने भारतीय जनता को संतुष्ट करने की अपेक्षा उसको अधिक असन्तुष्ट ही किया था । उनके मतानुकूल योजना अपर्याप्त एवं अर्द्धमार्गी थी । 1909 ई० के सुधार अधिनियम का उद्देश्य भारत में फूट डालकर शासन करना था । उस अधिनियम द्वारा पहली बार भारत में मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था की गई थी जिसके पीछे उन ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की चाल थी, जो साम्प्रदायिकता के बीज बो रहे थे । इन साम्राज्यवादियों ने ही 1906 में स्थापित मुस्लिम लीग को प्रोत्साहित कर भारत के राजनीतिक जीवन को गन्दा किया था । इस नीति द्वारा मुसलमानों को निर्वाचित स्थानों में जनसंख्या के अनुपात से अधिक स्थान दिए गए । इसके अलावा, केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति ने भी 1909 ई० की सुधार योजनाओं को काफी प्रभावित किया । इसका स्पष्ट परिणाम निकला कि समस्त भारतवासियों में असंतोष का वातावरण फैल गया ।

1.1.3 सरकार की दमनकारी नीति के प्रति प्रतिक्रिया :

ब्रिटेन की सम्राट सरकार ने सुधार अधिनियम द्वारा उदारवादियों को प्रसन्न करना प्रारंभ कर दिया और अपने दमनचक्र द्वारा उग्रवादियों को कुचलने की नीति को क्रियान्वित किया गया । ब्रिटिश सरकार की इस नीति से न तो उदारवादी प्रसन्न हुए और न उग्रवादी कुचले जा सके । इसका बुरा परिणाम यह हुआ कि समस्त भारत में सरकार के दमन-चक्र एवं कार्यों के प्रति घोर प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई । समस्त भारत में क्रान्तिकारी तथा आतंकवादी आन्दोलन सक्रिय हो गए । परिणामस्वरूप, राजनैतिक डकैतियाँ, हत्या एवं अन्य अपराधों की संख्या में अधिक वृद्धि होने लगी ।

1.1.4 भारतीयों की अन्य शिकायतें :

इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व भारतीयों को ब्रिटिश शासन के प्रति अनेक शिकायतें थीं । भारतीयों की अन्य शिकायतें थीं कि अस्त्रों के लाइसेन्स के सम्बन्ध में जातिभेद की नीति अपनायी जाती थी तथा स्वयंसेवी संघों में भारतीयों की नियुक्ति नहीं की जाती थी । 1912 ई० में स्थापित लोकसेवा आयोग भी अपने काम में शिथिल था । इसके अतिरिक्त दक्षिण अफ्रीका तथा ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतीयों के साथ भेद-भाव किया जाता था । इससे भारतीयों में क्षोभ एवं असंतोष की लहर फैल गई ।

1.1.5 लार्ड क्रेवे (Crewe) की नीति के प्रति प्रतिक्रिया :

1910 में लार्ड मार्ले के स्थान पर लार्ड क्रेवे भारत सचिव के रूप में नियुक्त किए गए । इनका दृष्टिकोण काफी अप्रगतिवादी एवं अनुदार था । उन दिनों लार्ड हार्विंज ने सुझाव दिया था कि भारत सरकार की नीति प्रान्तों में स्वायत्त शासन स्थापित करने की होनी चाहिए । उनके इस सुझाव का घोर विरोध तत्कालीन भारत सचिव लार्ड क्रेवे द्वारा किया गया था । अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किये गए लार्ड सभा में अपने वक्तव्य में उन्होंने स्पष्ट किया कि "भारत में एक है जो सोचता है कि भारत में सुधार का अगला कदम ऐसे स्वशासन के लिए होगा जो अन्य उपनिवेशों को दिया गया है ।

इस दिशा में भारत का कोई भविष्य नहीं दिखता । भारत सचिव होने के नाते मेरे द्वारा ऐसे गलत विचार का खण्डन किया जाना अनिवार्य है । लार्ड क्रेवे का यह दृष्टिकोण अप्रगतिवादी एवं अनुदार था । इसका परिणाम यह निकला कि उनके इस दृष्टिकोण से दोनों (उग्रवादी एवं उदारवादी) काफी क्षुब्ध एवं असन्तुष्ट हुए । पतिक्रियास्वरूप सम्पूर्ण भारत में क्रान्तिकारी संस्थाएँ काफी संख्या में स्थापित की गई । आतंकवादी नेता एवं कार्यकर्त्ता अधिक सक्रिय हो गए ।

1.1.6 प्रथम विश्व युद्ध का प्रभाव :

प्रथम विश्व युद्ध का जो प्रभाव परिलक्षित हुआ उसका व्यापक प्रभाव भारतीय नेताओं एवं जनसाधारण पर पड़ा। प्रथम विश्व युद्ध के प्रभाव ने भारत शासन अधिनियम, 1919 ई० के पारित होने के मार्ग को प्रशस्त किया । इस युद्ध में एक तरफ इंगलैण्ड, फ्रांस एवं रूस थे तो दूसरी तरफ जर्मनी एवं टर्की । प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ होते ही ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मि० ऐक्साविथ ने यह उद्घोषणा की कि ''भविष्य में भारत के प्रश्न को एक नये दृष्टिकोण से देखा जायेगा ।'' लायड जार्ज ने भी यह स्पष्ट किया था कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद सभी राष्ट्रों को अपने-अपने भाग्य निर्णय का अधिकार प्रदान किया जायेगा । मित्र राष्ट्रों ने भी यह उद्घोषणा की थी कि वे अपने स्वार्थ के लिए नहीं वरन् विश्व के जनतंत्र की रक्षा के लिए युद्ध लड़ रहे हैं । इससे भारतीयों को यह आशा हुई कि युद्ध समाप्ति के उपरान्त भारत को भी स्वशासन का अधिकार उपलब्ध होगा ।

1.1.7 होमरूल आन्दोलन का प्रभाव :

जब 1913 ई० में श्रीमती ऐनीबेसेन्ट (Annie Besant) इंगलैण्ड गयीं, तब आयरलैण्ड की होमरूल लीग ने उन्हें भारत में भी ऐसा ही आन्दोलन चलाने का सुझाव दिया । श्रीमती एनी वीसेन्ट ने भारत को ''अधिराज्य स्थिति'' दिलाने के लिए नारा लगाया । उन्होंने अपने को भारतीय ''टॉमटॉम'' (Tom Tom) बताया, जिसका अर्थ ''भारतीयों को स्वतंत्रता के लिए जगाने वाली'' होता है ।'' डॉ० जकारिया ने कहा है कि उनकी योजना राष्ट्रीय उग्रवादियों को क्रान्तिकारियों के साथ इकट्ठा होने से रोकती थी । वे भारतीयों को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर स्वराज्य दिलाकर संतुष्ट रखना चाहती थीं । श्रीमती एनी वेसेन्ट के नेतृत्व में होमरूल आन्दोलन चलाया गया जिसमें भारतीयों ने भाग लिया । लोकनायक तिलक ने उनको पूर्ण सहयोग दिया । ऐनीबेसेन्ट ने स्वयं स्वीकार किया था कि भारत अब साम्राज्यवाद के शिशुगृह में एक शिशु की तरह बन्द नहीं रहना चाहता था । भारत को स्वराज देना आवश्यक है ।

1.1.8. सरकार के प्रति मुसलमानों के दृष्टिकोण में परिवर्तन :

साम्राज्यवाद के प्रथम चरण में अंग्रेज शासकों ने मुसलमानों को हिन्दुओं से फोड़ने का प्रयास किया था । अंग्रेजों ने पहले सर सैय्यद अहमद खां एवं बाद में मुस्लिम लीग द्वारा मुसलमानों को कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रखने का प्रयास किया । लेकिन, 1911 ई० में बंगाल विभाजन को रदद् कर दिया गया । कांग्रेस के प्रति सरकार का रुख नरम था । लार्ड हार्डिज्ज कांग्रेस के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखते थे । उनके इस व्यवहार से मुस्लिम लीग के नेता एवं कार्यकर्त्ता दुखी एवं क्षुब्ध थे । इसके अतिरिक्त तुर्की इटली युद्ध तथा बालकन युद्ध के फलस्वरूप भी तथा इनके प्रति ब्रिटिश सरकार की नीति एवं दृष्टिकोण से भारतीय मुसलमान दुखी थे । तुर्की का सुल्तान विश्व भर के मुसलमानों का खलीफा (khalifa) था । प्रथम विश्व युद्ध में चूँकि तुर्की जर्मनी के साथ था इसलिए भारतीय मुसलमानों के प्रति सहानुभूति स्वाभाविक रूप में थी । भारत के राष्ट्रवादी पत्र-पत्रिकाओं ने मुसलमानों के प्रति सहानुभूति का दृष्टिकोण अपनाया एवं विचार अभिव्यक्त किया । इसका स्पष्ट परिणाम यह निकला कि मुस्लिम लीग अलीगढ़ आन्दोलन के प्रभाव से अलग हो गयी एवं उनका दृष्टिकोण राष्ट्रवादी गतिविधियों की ओर होने लगा । 1916 ई० में कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के बीच पैने विरोधात्मक विचारों का अन्त हुआ एवं दोनों के बीच एक समझौता हुआ, जिसको लखनऊ समझौता (Lucknow Pact) कहा जाता है । इस समझौते ने भारत के दो बड़े सम्प्रदायों को एक कर दिया और दोनों ने मिलकर समस्त भारत को एक करने के लिए कार्यक्रम बनाया तथा एक दूसरे को सहयोग देने के लिए तत्पर हो गये ।

1.1.9. केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के द्वारा एक ज्ञापन-पत्र :

केन्द्रीय व्यवस्थापिका के सदस्यों ने मिलकर सम्राट सरकार के पास एक ज्ञापन प्रेषित किए । इस ज्ञापन पत्र में यह स्पष्ट किया गया था कि केवल उत्तम सरकार की स्थापना ही पर्याप्त नहीं है । वास्तविकता यह है कि एक ऐसी सरकार की आवश्यकता है जो भारतीयों के प्रति उत्तरदायी हो । उस सरकार के निर्माण एवं गतिविधियों में भारतीयों का प्राबल्य हो एवं प्रभावकारी गतिविधियाँ हों । उस ज्ञापन में इस तथ्य पर बल दिया गया था कि कार्यकारिणी एवं व्यवस्थापिका परिषदों के सदस्यों में कम से कम आधे भारतीय हों, विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत हो, अल्पसंख्यकों को समुचित एवं पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान करने की उचित व्यवस्था हो तथा भारत के सचिव पद को समाप्त करना, क्योंकि इस पद का कोई औचित्य एवं उपयोगिता नहीं थी । कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के नेताओं ने इन कार्यक्रमों पर बल दना प्रारंभ कर दिया ।

1.1.10 मेसोपोटोमिया की घटना :

मेसोपोटामिया में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई जिसने भी 1919 ई० के भारत शासन अधिनियम के पारित होने के मार्ग को प्रशस्त किया । तुर्की के विरुद्ध कार्यवाही की पूरी जिम्मेदारी भारत सरकार के अधीन थी । मेसोपाटामिया कमीशन के प्रतिवेदन में यह स्पष्ट किया गया कि कि इस सम्बन्ध में भारत सरकार दोषी है तथा इस प्रतिवेदन में यह सुझाव दिया गया कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक सुधार लाना अनिवार्य है । उसने भारतीयों के लिए पूर्ण स्वशासन की सिफारिश की थी । जिस समय मेसोपोटामिया कमीशन के प्रतिवेदन पर ब्रिटिश संसद में वाद-विवाद हो रहा था, उस समय ब्रिटिश संसद में मौन्टेग्यु अपरिचित थे और उन्हीं के अनुसार यह अत्यधिक आधुनिक, अत्यधिक कड़ा, अत्यधिक अमानवीय है, जिसके चलते उनकी दृष्टि से अनुपयोगी हो गया है । अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए उन्होंने वायसराय को स्पष्ट किया तथा चेतावनी देते हुए कहा कि "जब तक वर्तमान अनुभव के आधार पर सदियों पुराने और जब तक शासन यंत्र का पुन: निर्माण न किया जाए, तब तक उन्हें भारतीय समाज की बागडोर को नियंत्रित करने का अधिकार नहीं है । चूँकि उन दिनों युद्ध की स्थिति भयावह थी और इंगलैण्ड भारत से अधिकतम सहायता पाने के लिए इच्छुक था, इसलिए परिस्थिति के सन्दर्भ में ही, ब्रिटिश प्रधानमंत्री, लायड जार्ज ने माण्टेग्यु को भारत सचिव नियुक्त किया, जिन्होंने 1919 ई० के भारत अधिनियम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

1.1.11 ड्यूक का याचना-पात्र :

विलियम. ड्यूक बंगाल का भूतपूर्व लेफ्टिनेण्ट गवर्नर था । वह भारत की परिषद् का भी सदस्य था । 1915 ई० में ड्यूक ने भारतीय समस्याओं के प्रति एक याचना-पत्र प्रस्तुत किया । इस याचना-पत्र में उसने प्रान्तों में द्वैध शासन स्थापित करने का सुझाव दिया था एवं इसकी उपयोगिता की ओर ब्रिटिश शासन का ध्यान केन्द्रित किया था । उसके विचार में भारत में एकाएक पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना न तो अनिवार्य था और न वांछनीय था ।

अत: उपरोक्त तथ्य ने प्रेरक तत्त्व के रूप में कार्य किया एवं भारत शासन अधिनियम 1919 के पारित प्रस्ताव में सहयोग किया ।

1.2 मुख्य विषय

इंगलैण्ड से ही माण्टेग्यु ने यह भी सूचित किया कि वह शीघ्र ही भारत जायेगा । उसने स्पष्ट कहा कि वह कुछ करने जा रहा है । मैं नए युग के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करूगा । मैं अपने इस प्रयास में सफल होने का सभी संभव उपाय करूगा । 1917 ई० के नवम्बर में वह भारत आया । तत्कालीन वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड से उसने परामर्श किया । भारतीय नेताओं से भी उसने परामर्श किया । भारतीय शासन-व्यवस्था में सुधार लाने के लिए उसने एक योजना प्रस्तुत की ।

उसके द्वारा प्रस्तुत सुधार योजना 1918 ई० में प्रकाशित की गई । इसे मॉण्टेग्यु चेम्सफोर्ड सुधार योजना के नाम से जाना जाता है । उस योजना में सुधार सम्बन्धी निम्नलिखित सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया था ।

1. यथासंभव स्थानीय निकायों पर लोकप्रिय नियंत्रण रहे तथा बाह्य नियंत्रण से मुक्ति मिले ।
2. भारतीय प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लिए यथाशीघ्र कदम उठाया जाए ।
3. भारत सरकार संसद के प्रति पूर्ण उत्तरदायी हो, लेकिन अनिवार्य विषयों में उनकी शक्ति सर्वोच्च हो ।
4. क्रमश: भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों पर भारत सचिव एवं ब्रिटिश संसद का नियंत्रण कम किया जाय।

अत: यह स्पष्ट होता है कि मॉण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट उदारवाद के सिद्धान्त पर आधारित था । इस सम्बन्ध में कूपलैण्ड का विचार है कि "भारत सरकार की सम्पूर्ण समस्याओं से सम्बद्ध यह पहला कदम था । राजनीति शास्त्र के लिए तो यह रिपोर्ट एक स्थायी देन ही सिद्ध हुई । इस प्रतिवेदन के आधार पर 1919 ई० का भारत सरकार अधिनियम पारित हुआ ।

1.2.1 अधिनियम के महत्त्वपूर्ण तथ्य :

1919 ई० के भारत शासन अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

प्रान्तों में आंशिक उत्तरदायित्व की स्थापना :

इस अधिनियम द्वारा प्रान्तीय कार्यपालिका को दो भागों में विभक्त किया गया–

(क) पार्षद एवं

(ख) मंत्रियों ।

प्रान्तीय विषयों को भी दो भागों में विभक्त किया गया–

(क) सुरक्षित विषय (Reserved) एवं

(ख) हस्तान्तरित (Transferred) विषय ।

संरक्षित विषयों के प्रशासन का दायित्व पार्षदों को दिया गया । हस्तान्तरित विषयों के प्रशासन का दायित्व मंत्रिगण को प्रदान किया गया जो प्रान्तीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे । अत: यह स्पष्ट होता है कि पहली बार इस अधिनियम के माध्यम से प्रान्तों में आंशिक उत्तरदायी सरकार की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया गया ।

1.2.2 विकेन्द्रीकरण की नीति को प्रोत्साहन :

इस अधिनियम की एक विशेषता विकेन्द्रीकरण की नीति थी । चूँकि प्रान्तों को प्रशासन में आंशिक उत्तरदायित्व प्रदान किया गया, अत: स्वाभाविक था कि केन्द्रीय सरकार के नियंत्रणात्मक शक्ति को कम किया जाए । प्रान्तीय विषयों एवं केन्द्रीय विषयों को अलग-अलग कर दिया गया । प्रान्तीय बजट एवं केन्द्रीय बजट को भी अलग-अलग कर दिया गया ।

1.2.3. साम्प्रदायिक मताधिकार को विस्तृत करने का प्रयास :

1919 ई० के भारत शासन अधिनियम के द्वारा समस्त भारत में साम्प्रदायिक मताधिकार का विस्तार किया गया । मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों को विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए व्यवस्था की गयी, उदाहरणस्वरूप सिक्खों, ईसाइयों एवं आंग्ल भारतीयों को विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया ।

1.2.4 भारत सचिव एवं ब्रिटिश संसद के नियंत्रण में कमी :

मॉण्टफोर्ड सुधार योजना में चूँकि गृह सरकार को भारतीय शासन में हुए परिवर्तन को लागू करने के लिए नियंत्रित करने की सिफारिश की गई थी, इसलिए अभी भी भारत सचिव का निरीक्षण, निर्देशन एवं नियंत्रण का अधिकार बना हुआ था । लेकिन व्यवहार में भारत सचिव और ब्रिटिश संसद ने भारतीय प्रशासन में कम-से-कम हस्ताक्षेप की नीति अपनायी ।

वैसे तो संरक्षित विषयों पर उनका वैधानिक अधिकार बना रहा लेकिन यह परम्परा सी बन गयी कि केन्द्रीय व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के एकमत होने पर गृह सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी ।

1.2.5 अनुत्तरदायी केन्द्रीय सरकार :

1919 ई० के अधिनियम की अन्य विशेषता यह थी कि भारत सरकार पिछले की भांति ही भारतीयों के प्रति अनुत्तरदायी बनी रही । गवर्नर जनरल के प्रशासन में सहायता देने के लिए कार्यपालिका परिषद थी लेकिन उसके सदस्य गवर्नर जनरल के प्रति उत्तरदायी थे, केन्द्रीय व्यवस्थापिका के प्रति नहीं । कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों को केन्द्रीय कार्यपालिका अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा पदच्युत नहीं कर सकती थी ।

1.2.6. अधिक प्रतिनिधित्यात्मक एवं प्रभावकारी केन्द्रीय व्यवस्थापिका :

इस अधिनियम द्वारा वस्तुतः केन्द्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना नहीं की गई थी, फिर भी केन्द्रीय कार्यपालिका को प्रभावित करने के लिए केन्द्रीय व्यवस्थापिका की शक्ति एवं आकार में वृद्धि की गई ।

1.2.7. 1919 ई० अधिनियम :

1919 ई० में ब्रिटिश संसद द्वारा भारतीय प्रशासन का जो अधिनियम लागू किया गया उसके अनुसार प्रशासन की प्रत्येक शाखा में अधिकारिक स्थान दिये जाने तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी शासन को क्रमिक उन्नति के लिए क्रमशः स्वायत्त संस्थाओं का विकास किये जाने के प्रावधान थे ।

और, जबकि इस नीति की प्रगति क्रमशः हो सकती है तो यह आवश्यक एवं उचित है कि इस दिशा में वास्तविक कदम इसी समय उठाए जाएँ ।

और, जबकि उनलोगों का सहयोग, जिन्हें सेवा के नये अवसर मिलेंगे और यह बात कि उन पर किस हद तक विश्वास किया जा सकता है, इन मामलों में पार्लियामेन्ट का मार्गदर्शन करेंगे ।

और जबकि प्रान्तों में स्वायत्त संस्थाओं के क्रमिक विकास के साथ-साथ इन प्रान्तों को प्रान्तीय विषयों में भारत सरकार के नियंत्रण से इस अंश तक स्वाधीनता देना उचित है, जिस अंश तक भारत सरकार को अपना उत्तरदायित्व निभाने में बाधा न पड़े, कानून बनाया जाता है ।

1.2.8 उपरोक्त तथ्यों से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :

1. भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक अभिन्न अंग बना रहेगा ।
2. ब्रिटिश संसद की घोषित नीति का उद्देश्य भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना होगी ।
3. उत्तरदायी शासन की प्राप्ति केवल बौद्धिक विकास द्वारा होगी ।
4. उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए दो बातों का होना अनिवार्य है–

   (अ) प्रशासन की प्रत्येक शाखा में भारतीयों का बौद्धिक सहयोग एवं

   (ब) स्व-शासन संस्थाओं का क्रमिक विकास ।

1.2.9 अधिनियम की प्रस्तावना के विश्लेषण :

अधिनियम की प्रस्तावना के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारत में सांविधानिक दृष्टि के विकास में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान था । वस्तुतः 1947 ई० तक 1919 ई० के अधिनियम की यह प्रस्तावना भारतीय सांविधानिक विकास का आधार बनी रही और भारतीय नेताओं को इससे प्रेरणा मिलती रही । इस प्रस्तावना का एक अन्तर्निहित दोष यह था कि इसके अन्तर्गत भारत में उत्तरदायी शासन के विकास की प्रत्येक किस्त की अवधि निर्धारित करने का अधिकार ब्रिटिश संसद को ही प्राप्त था ।

1.2.10 द्वैध शासन-स्वरूप और उसका कार्यान्वयन :

1919 के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में एक विचित्र प्रकार की शासन-व्यवस्था स्थापित की गयी जिसको द्वैध शासन प्रणाली कहा गया है । इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकार को दो भागों में बाँट दिया गया–संरक्षित और हस्तांतरित । संरक्षित विभाग में पुलिस, कानून-व्यवस्था, जेल, समाचार पत्र, वित्त या लगान, प्रशासन, न्याय, सिंचाई, जलमार्ग, जंगल, खान, बिजली व उद्योग-धंधे रखे गये । हस्तान्तरित विभाग में स्थानीय स्वशासन, शिक्षा, चिकित्सा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सार्वजनिक निर्माण, कृषि, आबकारी, पशु चिकित्सा इत्यादि विषय रखे गये । संरक्षित विषयों का शासन भार गर्वनर तथा उसकी कार्यकारिणी परिषद् के जिम्मे रहा तथा हस्तांतरित विषयों का भार मंत्रियों के ऊपर । कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य प्रान्तीय विधान परिषद् के प्रति उत्तरदायी नहीं थे लेकिन मंत्री प्रान्तीय विधान परिषद् के सदस्य होते थे तथा उनके प्रति उत्तरदायी भी ।

1.2.11. 1919 के अधिनियम द्वारा प्रान्तीय कार्यपालिका को दो भागों–सभासदों तथा मंत्रियों में बाँटा गया :

सभासद् ब्रिटिश संसद के प्रति, मंत्री प्रान्तीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे । हस्तांतरित मंत्रियों के अधीन एवं रक्षित विषय सभासदों के अधीन रखे गये । प्रान्तीय सरकार का दो भागों में यह विभजन जो अलग-अलग विषय का संचालन था और जो दो विभिन्न स्वामियों के प्रति उत्तरदायी था, का ही नाम द्वैध शासन है ।

1 अप्रैल, 1921 को भारत के आठ प्रान्तों (बंगाल, मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रान्त एवं असम) में लागू किया गया । पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में इसे 1932 में लागू किया गया । इस प्रकार यह शासन-प्रणाली एक अप्रैल 1937 तक लागू रही । इस अवधि में मध्य प्रान्त में यह पहली बार 1924 से 1926 तक रुकी रही । बंगाल में यह दो बार 1924 से 1926 तक एवं 1929 के कुछ महीनों के लिए रुका रहा । स्वराजिस्ट पार्टी के निर्णय के कारण यह रुका रहा, क्योंकि उन प्रान्तों में भी इस दल का बहुमत था जो द्वैध शासन से असंतुष्ट था ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने द्वैध शासन के अन्तर्गत हुए 1920-21 के चुनाव का बहिष्कार किया । इससे उदारवादियों को 1921-23 में मंत्री पद पर पहुँचने का एक अच्छा अवसर मिला । फिर 1924 में कांग्रेस ने चुनाव में भाग लिया परन्तु राष्ट्रवादी दलों ने हमेशा द्वैध शासन की समाप्ति के लिए आवाज उठाई । द्वैध शासन की कार्यवाहियों पर रिपोर्ट देने के लिए 1924 में मुडीमैन कमिटी की नियुक्ति की गई जिसने सुझाव दिया कि द्वैध शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए इसमें कुछ परिवर्तन आवश्यक है । साइमन कमीशन ने भी इसकी कुछ गलतियों को बतलाया, परन्तु जब द्वैध शासन व्यवहार में लाया जब इनकी त्रुटियाँ दिखाई दीं । अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह व्यवस्था सर्वथा असफल रही ।

1.2.12 द्वैध शासन का सिद्धान्त ही भूल से भरा था :

प्रशासन का दो भागों में विभाजन सैद्धान्तिक दृष्टि से गलत था । राजनीतिक सिद्धान्त एवं प्रक्रिया के विरुद्ध था। 1919 अधिनियम में जिस विभाजन की चेष्टा की गयी थी, वह कभी भी स्वाभाविक नहीं हो सकता था । रक्षित और हस्तांतरित विषयों के रूप में विभागों का विभाजन कभी भी पूर्णरूप से नहीं किया जा सकता था । इस शासन प्रणाली के अन्तर्गत जिस प्रकार का विभाजन किया गया था उससे बुरा विभाजन नहीं हो सकता था । के० पी० रेड्डी जो मद्रास के मंत्री रह चुके थे, उनका कहना था कि "मैं एक विकास मंत्री था किन्तु मेरे अधीन जंगल विभाग नहीं था । मैं कृषि मंत्री था किन्तु सिंचाई विभाग मेरे अधीन नहीं था । कृषि मंत्री के रूप में मद्रास के जमींदारों के ऋण अधिनियम अथवा मद्रास भूमि सुधार ऋण अधिनियम के प्रशासन कार्य के सम्बन्ध में मेरा कोई कार्य नहीं था ।" सी० वाई० चिन्तामणि जो यू० पी० के मंत्री रह चुके थे, ने एक उदाहरण दिया । 1921 में एक जांच कृषि विभाग में भूमिकर के सम्बन्ध में आरंभ की गयी । जब 1922 में रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी तब यह अनुभव किया गया कि इस प्रश्न पर राजस्व विभाग द्वारा कार्रवाई की जानी चाहिए थी, जब मामला उस विभाग को सौंप दिया गया । जब इस बार 1924 में रिपोर्ट सामने आया तो तय

हुआ कि यह विषय सहकारी विभाग को भेजा जाना चाहिए । इस प्रकार के कई उदाहरण पेश किये जा सकते हैं ।

प्रान्तों में द्वैध शासन एक अजीब प्रयोग था जिसकी सफलता राज्यपालों के व्यक्तित्व एवं गुणों पर निर्भर करती थी। इस प्रणी को सफल बनाने के लिए राज्यपाल को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी थी । उन्हें देखना था कि हस्तांतरित तथा रक्षित विषयों के मतभेद को किस तरह कम किया जा सकता है । यदि मंत्रियों के कार्यों में राज्यपाल अनुचित हस्तक्षेप करे तथा उनको आवश्यकतानुसार सहयोग न दे अथवा अपनी विशेष शक्तियां का बार-बार प्रयोग करें तो द्वैध शासन को असफल होना ही था । दुर्भाग्यवश अधिकांश राज्यपालों में इन गुणों की कमी थी ।

1.2.13 1919 के अधिनियम द्वारा राज्यपालों को काफी शक्तियाँ देकर संवैधानिक अध्यक्ष न बनाकर स्वेच्छाचारी शासक बना दिया गया ।

राज्यपालों को कार्यपालिका, विधायिका एवं वित्त सम्बन्धी अनेक शक्तियाँ प्राप्त थीं जिन्होंने मंत्रियों के कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप करना आरंभ कर दिया जबकि अधिनियम का उद्देश्य यह था कि साधारणतया मंत्रियों की सलाह मानी जानी चाहिए जबतक उनकी सलाह मानने से कोई भयंकर परिणाम न निकले । राज्यपालों ने इस सिद्धान्त का अनुसरण किया कि चूंकि मंत्री केवल परामर्शदाता हैं इसलिए उनके परामर्श को मानना या न मानना उसकी इच्छा पर निर्भर करता है।

1.2.14 मांटफोर्ड सुधारों के रचयिताओं ने प्रान्तीय सरकार के दोनों भागों (रक्षित तथा हस्तांतरित) में संयुक्त विचार-विमर्श की सिफारिश की थी :

ताकि मंत्रियों द्वारा राज्यपाल की परिषद को जनता की इच्छाओं का पता चले और परिषद के सदस्यों के अनुभवों से मंत्री कुछ सीखे । उपदेश-पत्र में भी राज्यपालों को ऐसे ही निर्देश दिये गये थे परन्तु मद्रास के राज्यपाल को छोड़कर अन्य राज्यपालों ने इस बात पर कोई ध्यान नही दिया, मंत्रियों से सदैव यह आशा की जाती थी कि विधान परिषद में वे अपने साथी सभासदों की प्रत्येक बात का समर्थन करेंगे, परन्तु उनसे रक्षित विभागों के बारे में ने तो कोई परामर्श लिया जाता था, न ही उन विभागों को प्रभावित करने का उनके पास कोई अवसर था ।

प्रान्तों की विधान परिषदों की रचना भी अत्यन्त दोषपूर्ण थी । उसमें लगभग 30% सदस्य सरकारी अधिकारी या सरकार द्वारा मनोनीत गैर-सरकारी अधिकारी थे । निर्वाचित सदस्य भी विभिन्न वर्गों, समुदायों और हितों के प्रतिनिधि थे। मिल-जुलकर काम करने की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव था, इस प्रकार प्रान्तीय परिषदें वाद-विवाद करने वाली क्लबें मात्र ही थीं ।

1.2.15. वित्तीय कठिनाइयों ने भी प्रान्तीय द्वैध शासन के प्रयास को सफल नहीं होने दिया :

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद संसार के प्रायः सभी देश को आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ा । भारत भी इससे अछूता नहीं रहा । मंत्रियों को इससे बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं । मेस्टन (Meston) निर्णय के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को प्रतिवर्ष जो कुछ धन केन्द्रीय सरकार को देना पड़ता था, उससे प्रान्तों की आर्थिक रीढ़ ही टूट गयी थी । प्रान्तों में वित्त विभाग रक्षित विषयों में था । यह हर मामले में रक्षित विभागों का पक्ष लेता था तथा उन्हें हर प्रकार की सुविधा देता था तथा हस्तांतरित विभागों की सर्वदा उपेक्षा की जाती थी । इस प्रकार मंत्रियों को वित्त विभाग के अनुचित हस्तक्षेप के कारण अपने कार्य में बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती थी । द्वैध शासन-प्रणाली के अधीन वित्तीय व्यवस्था की असंगतियाँ इतनी प्रमुख थीं कि स्वाभाविक ढंग से विभागों का काम करना सम्भव ही नहीं था । जब मंत्रियों को कोष के ऊपर ही नियंत्रण रखने का अधिकार नहीं था तो उत्तरदायी शासन की बात करना कोई अर्थ नहीं रखता ।

1.2.16. द्वैध शासन की असफलता का एक मुख्य कारण मंत्रियों को अपने अधीनस्थ अधिकारियों पर कोई नियंत्रण नहीं होना था :

मंत्रियों के अधीन अनेक विभागों के सचिव सिविल (Civil Service) के होते थे, जो भारत मंत्री के नियंत्रण में

होते थे । सिविल सर्विस के अधिकारियों के हितों की रक्षा का भार राज्यपाल पर था । इस प्रकार उनकी नियुक्ति, पदोन्नति तथा हस्तान्तरण पर मंत्रियों का कोई हाथ नहीं था । जहाँ मंत्री अपने विभाग के लिए व्यस्थापिका के प्रति उत्तरदायी था वहाँ चूंकि उसे अधीनस्थ अधिकारियों पर अधिकार नहीं था इसलिए वह अपना उत्तरदायित्व पूरी तरह नहीं निभा सकता था । चूंकि मंत्री इन अधिकारियों का कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे इसीलिए वे मंत्रियों की उपेक्षा करते थे । वे खुलेआम मंत्रियों के आदेशों का उल्लंघन करते थे ।

1.2.17 परन्तु प्रान्तों में द्वैध शासन की असफलता के लिए तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी थीं :

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत में राष्ट्रीय भावना बहुत तेज हो गयी थी । उन्हें ब्रिटिश सरकार से बहुत आशायें थीं क्योंकि भारत ने विश्व युद्ध में ब्रिटेन की हर संभव मदद की थी । किन्तु, उन्हें इसके बदले द्वैध शासन मिला जो अत्यन्त ही अपर्याप्त तथा निराशाजनक था । जब भारतीयों ने स्वराज्य की मांग की तो उनका दमन किया गया । 13 अप्रैल 1919 को जालियाँ वाला बाग हत्याकाण्ड हुआ जिसके लिए ब्रिटिश सरकार ने दोषी अधिकारियों को कोई दण्ड नहीं दिया । दूसरी तरफ खिलाफत आन्दोलन भारतीय मुसलमानों को असंतुष्ट कर रहा था । इन्ही परिस्थितियों में महात्मा गांधी ने सितम्बर 1920 में सरकार के विरुद्ध अहिंसात्मक असहयोग की नीति अपनाने का आग्रह किया । इसके अनुसार सरकारी उपाधियों को वापस लौटाना, सरकारी न्यायालयों, विधान मण्डलों और शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार करना था । यह आन्दोलन लगभग दो वर्षों तक चला । 10 मार्च 1922 को महात्मा गाँधी गिरफ्तार कर लिए गए । इस आन्दोलन ने देश भर में सद्भावना और मित्रता के स्थान पर कटुता, अविश्वास और वैमनस्य का वातावरण उत्पन्न कर दिया । ऐसी स्थिति में प्रान्तों में द्वैध शासन की असफलता निश्चित थी ।

1.2.18 1927 में भारत में द्वैध शासन

1927 में भारत में द्वैध शासन की कठिनाइयों की जाँच करने के लिए एक भारतीय कानूनी आयोग की नियुक्ति हुई । इस आयोग के सभी सदस्य अंग्रेज थे । अतः बहिष्कार के लिए आन्दोलन संगठित किया गया । 1830 में आयोग ने अपनी रिपोर्ट दी और इसके बाद गोलमेज सम्मेलन हुआ । उग्र राष्ट्रवादियों ने इसका बहिष्कार किया क्योंकि वह भारत को अधिराज्य स्थिति वा पूर्ण स्वराज्य देने और उसका संविधान बनाने के लिए नहीं बुलाया गया था । इसी बीच महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ कर दिया जिससे सरकार को भारत की मांगों को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जा सके । 1931 में गांधी तथा वायसराय के बीच हुए समझौते से आन्दोलन को स्थगित किया गया परन्तु कुछ ही महीनों बाद वह आन्दोलन फिर शुरू हो गया । 14 जनवरी, 1932 को महात्मा गाँधी गिरफ्तार कर लिए गये । इसके बाद भारतीयों का ध्यान 1919 के सुधारों पर अमल करने की ओर बिल्कुल न रहा और वे भविष्य में सुधारों की आशा करने लगे ।

प्रथम विश्व युद्ध के समय ब्रिटेन ने भारत को स्वराज्य का आश्वासन दिया था किन्तु युद्ध समाप्ति के पश्चात् भारतीयों को स्वराज्य के बदले लाठियों के प्रहार, गोलियाँ और फौजी कानून मिला । इसी समय ब्रिटेन में अनुदार दल की सरकार सत्ता में आ गयी जिसने निर्देश जारी जारी किया कि अब से सुधारों पर इस प्रकार अमल होना चाहिए कि उनसे अधिक से अधिक नहीं बल्कि कम से कम स्वशासन भारत को मिले । इस प्रकार सिर्फ आन्तरिक दोष ही नहीं अपितु तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ भी द्वैध शासन की असफलता के लिए उत्तरदायी थीं ।

1.2.19 अनेक कमियों के बावजूद प्रान्तों में द्वैध शासन व्यवस्था भारतीय संविधान एवं प्रशासन के विकास में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण माना गया । इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रान्तीय क्षेत्र में आंशिक उत्तरदायित्वपूर्ण शासन प्रणाली का आरंभ हुआ । यह शासन प्रणाली दोषपूर्ण थी, यह सभी स्वीकार करते हैं । मान्टेग्यू ने कॉमन्स सभा में स्पष्ट रूप से कहा था "मैं सदन को याद दिलाना चाहूँगा कि जानबूझ कर इरादे से 20 अगस्त की घोषणा की शर्तों के अनुकूल यह विधेयक भारत को एक स्थायी संविधान नहीं देता । यह संक्रमणकालीन है । यह संसद और भारतीय जनता के प्रतिनिधियों

के शासन को मिलाने वाला सेतु है।'' इस कथन से द्वैध शासन प्रणाली लागू करने का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। श्री के० बी० पुन्निआह के अनुसार द्वैध शासन प्रणाली एक अनोखा प्रयोग था। इनका मुख्य प्रयोजन और उद्देश्य भारतीयों को उत्तरदायी शासन की कला में प्रशिक्षण देना था। नि:सन्देह इसके निर्माता इस प्रणाली के दोषों और कमियों से परिचित थे, परन्तु वे सोचते थे कि तत्कालीन परिस्थितियों में उससे अच्छा कोई विकल्प नहीं था।''

1.2.20 फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि द्वैध शासन प्रणाली भारतीयों के लिए सर्वथा लाभहीन रहा। द्वैध शासन के द्वारा पहली बार लोगों को मताधिकार मिला। औरतों को भी मत देने का अधिकार दिया गया। इससे राजनीतिक जागरूकता आई और नियमित रूप से और बड़े पैमाने पर चुनाव लड़ा गया। परिषदों में पहली बार संसदीय वातावरण तैयार हुआ। ब्रिटिश नौकरशाही के दृष्टिकोण में थोड़ा परिवर्तन हुआ जिन्हें पहली बार मंत्रियों के आदेशों का पालन करना पड़ा। मंत्रियों को प्रथम बार सरकारी दस्तावेजों को देखने का मौका मिला। भारतीय मंत्रियों के अधीन अनेक सरकारी विभाग थे। अत: सेवाओं का भारतीयकरण आरंभ हुआ। भारतीय मंत्रियों को सरकार संचालन का अनुभव प्राप्त हुआ। उत्तरदायी सरकार का संचालन करने की हमारी क्षमता पर अब कोई प्रश्नचिह्न नहीं था। बहुत सी सुधार योजनाओं को कार्यान्वित किया गया जिसने स्पष्टतया यह प्रमाणित कर दिया कि भारतीय अच्छे प्रशासक हो सकते हैं। स्वायत्त शासन को अधिक लोकप्रिय बनाया गया। 1923 का बम्बई लोकल बोर्ड्स ऐक्ट एवं 1923 के कलकत्ता म्युनिसिपल ऐक्ट इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। 1926 का दि मद्रास रिलिजियस इन्डोमेन्ट ऐक्ट समाज के परम्परागत निहित हितों के विरुद्ध एक ठोस कदम था। 1923 के बम्बई प्राइमरी एजुकेशन ऐक्ट के द्वारा अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा पर जोर दिया गया। 1922 का बिहार एण्ड उड़ीसा विलेज एडमीनिस्ट्रेशन ऐक्ट ने ग्राम पंचायतों के अधिकारों का निर्धारण किया। द्वैध शासन अपने आप में कोई आदर्श नहीं था बल्कि आदर्श प्राप्ति की दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण कदम था।

1.3 सारांश :

1. 1909 अधिनियम में खामियाँ।
2. भारतवासियों की शिकायतें।
3. प्रथम विश्वयुद्ध एवं होमरूल आन्दोलन का प्रभाव
4. 1919 का अधिनियम एवं उसकी धाराएँ तथा समीक्षा
5. द्वैध शासन की विशेषताएँ
6. द्वैध शासन का क्रियान्वयन

1.4 व्याख्या वाले शब्द :

उत्तरदायी सरकार;

संरक्षित एवं हस्तांतरित विषय;

केन्द्रीय व्यवस्थापिका;

स्वशासन;

द्वैध शासन;

सिविल सर्विस।

1.5 प्रश्नावली

A. संक्षिप्त उत्तर वाले प्रश्न

1. 1919 के अधिनियम के पारित होने के क्या कारण थे ?
2. 1919 के अधिनियम की संघीय व्यवस्था पर टिप्पणी लिखें ।

B. लम्बे उत्तर वाले प्रश्न

1. 1919 के अधिनियम के प्रावधानों की समीक्षा करें ।
2. द्वैध शासन से आप क्या समझते हैं ? यह क्यों असफल रहा ?

1.6 पाठय पुस्तकें :

1. भारतीय संविधान एवं राष्ट्रीय विकास के मुख्य स्थल : **जी० एन० सिंह**
2. भारत का संवैधानिक इतिहास : **ए० सी० बनर्जी**
3. भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास का इतिहास : **आर० सी० अग्रवाल**
4. Dyarchy : **Appadorai**
5. British Paramountcy and Indian Renaissance : **R.C. Majumdar.**

◆◆◆